ब्रह्मवैवर्त पुराण

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण

[प्रथम खण्ड]

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षड्दर्शन, २० स्मृतियाँ
और १८ पुराणों के प्रसिद्ध
भाष्यकार ।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर) बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं० ७४२४२

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली २४३००३ (उ० प्र०)

फोन : ७४२४२

❀

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❀

❀

संशोधित जनोपयोगी संस्करण :

सन् १९८७

❀

मुद्रक :

शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस

सेठ भीकचन्द मार्ग, मथुरा

❀

मूल्य : Rs 20--

उन्नीस रुपये मात्र

प्राक्कथन

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' अठारहों पुराणों में एक दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखता है। अन्य पुराणों में जहाँ अधिकांश वर्णन पाँच मुख्य विभागों से सम्बन्धित होते हैं, वहाँ 'ब्रह्मवैवर्त' में सृष्टि की उत्पत्ति का थोड़ा-सा वर्णन कर देने के अतिरिक्त शेष में ऐसी कथाएँ और साम्प्रदायिक साधनाएँ और उपासनाएँ दी हैं, जो अन्यत्र बहुत ही कम पाई जाती हैं। इसके सभी कथानकों में कुछ नवीनता है और कितनी बातें तो ऐसी हैं जिनका अन्य किसी भी पुराण में उल्लेख नहीं है। इसीलिए आरम्भ में दी गई 'अनुक्रमाणिका' में लेखक ने स्वयं कह दिया है—

पुराणोदपुराणानां वेदानां भ्रमभंजनम्।
हरिभक्तिप्रदं सर्वतत्वज्ञान विविर्द्धनम्॥

कामिनां कामदश्चेदं मुमुक्षुणांच मोक्षदम्।
भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपकम्॥

अर्थात् 'समस्त पुराणों और उप-पुराणों तथा वेदों के भ्रम का भंजन करने वाला, हरि-भक्त का उत्पादक, समस्त तात्विक ज्ञान की वृद्धि करने वाला, कामियों की कामना की पूर्ति करने वाला और मोक्षाभिलाषियों को मोक्ष दिलाने वाला, वैष्णव जनों को भगवत् भक्ति का मार्गदर्शक यह 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' है। इस प्रकार इसे एक कल्पवृक्ष ही समझना चाहिए।' आगे चल कर फिर कहा है—

सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम्।
ततो गणेशखण्डे च तज्जन्म परिकीर्तितम्।

अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेद-सुदुर्लभम् ।

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' सब पुराणों का सार है । और केवल वेदों से समस्त हैं । इसके 'गणेश खण्ड' में गणेश-जन्म की कथा तो ऐसी अपूर्व है कि उसका उदाहरण वेदों में भी मिल सकना दुर्लभ है ।''

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के 'सृष्टि-प्रकारण' में भी अन्य पुराणों की अपेक्षा बहुत अन्तर है । अन्य सब पुराणों में अव्यक्त परम ब्रह्म को ही सृष्टि का निमित्त बतलाया है और उसी से मूल प्रकृति तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों की उत्पत्ति बतलाई है । पर 'ब्रह्मवैवर्त' में सब का स्रोत एक मात्र गोलोक निवासी श्रीकृष्ण को कहा है । परब्रह्म को सदाशिव कहा जाय, महाविष्णु कहा जाय अथवा श्रीकृष्ण कहा जाय, या उसको कोई शक्ति अथवा दुर्गा कहना ही पसन्द करे, तो इससे वास्तविक तथ्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता । हम अच्छी तरह जानते हैं कि 'भाषा-भेद, अथवा 'रुचि-भेद, का ईश्वर के निकट कोई महत्व नहीं हो सकता । पर 'ब्रह्मवैवर्त' के लेखक ने जिस प्रकार आकस्मिक रूप से सब पदार्थों और शक्तियों की उत्पत्ति बतलाई है वह दार्शनिक और वैज्ञानिक ढंग से विचार करने वालों को अद्भुत ही प्रतीत होगी ।

''इस विश्व को शून्यता से पूर्ण और गोलोक को भयंकर देख कर स्वच्छामय प्रभु ने बिना किसी की सहायता के अपनी इच्छा से ही इस सृष्टि का सृजन करना आरम्भ किया । सबके आदि में परम पुरुष के दक्षिण पार्श्व से संसार के कारण स्वरूप तीन गुण प्रकट हुए । इसके पश्चात् उनसे महत्तत्व, अहंकार, पञ्च तन्मात्रा प्रकट हुए जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन संज्ञाओं वाले थे । इसके अनन्तर स्वयं नारायण प्रभु आविर्भूत हुए जो श्याम वर्ण वाले, युवावस्था से सम्पन्न पीताम्बर धारी वनमाला पहिने और चार भुजाओं वाले थे । वे

कामदेव की प्रभा से युक्त, रूप और लावण्य की दृष्टि से परम सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख अञ्जलि बाँध कर उनकी स्तुति करने लगे। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व से शुद्ध स्फटिक के सदृश्य पाँच मुखों वाले दिगम्बर अर्थात् बिल्कुल नग्न शिव का आविर्भाव हुआ। तपे हुए सुवर्ण के तुल्य जटाओं के भार को धारण करने वाला, परम श्रेष्ठ, थोड़े हास्य से प्रसन्न मुख वाला, तीन नेत्र और मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाला इनका स्वरूप था। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण की नाभि स्थित कमल से कमण्डलु और वर को धारण किये हुए ब्रह्मा जी का आविर्भाव हुआ। इनके वस्त्र श्वेत वर्ण के थे, और ये शुक्ल दाँतों और केशों वाले चार भुजाओं से युक्त थे। ये योगी, शिल्पियों के ईश और सब के गुरु थे।"

"इसके अनन्तर परमात्मा के वक्षस्थल से एक स्मितयुक्त, शुक्ल वर्ण का, जटाओं को धारण किये हुए पुरुष प्रकट हुआ, जो सब का ज्ञाता था। वह धर्म ज्ञान से युक्त, धर्म रूप, धर्मिष्ठ और धर्म को देने वाला था। उस धर्म के वाम पार्श्व से एक कन्या का आविर्भाव हुआ। यह मूर्तिमती साक्षात् दूसरी कमला (लक्ष्मी) ही थी। इसके पश्चात् परमात्मा के मुख से एक शुक्ल वर्ण वाली, करों में वीणा और पुस्तक धारण किये हुए देवी प्रकट हुई। यह करोड़ों पूर्ण चन्द्रों की शोभा से युक्त और शरत्काल के विकसित कमलों के समान नेत्रों वाली थी।"

इसी तरह श्रीकृष्ण के विभिन्न अवयवों से महालक्ष्मी, दुर्गा, सावित्री, कामदेव, रति, अग्नि, वरुण, वायु आदि देवी-देवगण हुए, और सब उनकी स्तुति करके गोलोक की सभा में विराजमान हो गये। यह गोलोक 'ब्रह्मवैवर्त' के मतानुसार नित्य है (पृष्ठ १४५|श्लोक ५)। इसका वर्णन भी बड़ा अद्‌भुत है। जब श्रीकृष्ण ने सब देव और

देवियों की सृष्टि पूरी करली तो वे कहाँ गये ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है—

"इस सब की सृष्टि करके वे फिर अत्यन्त रम्य रास मण्डल में चले गये। उस कामनीय रास मण्डल मे भगवान इन सबको ले गये। अत्यन्त रम्य कल्प वृक्षों का समुदाय वहाँ पर है, और उनके मध्य में अति मनोहर तथा विस्तार वाला, समतल स्वरूप से युक्त एवं सुस्निग्ध मण्डलाकार स्थान है। वह स्थान चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से भलीभाँति संस्कार किया हुआ है। दधि, लाजा (खील अथवा लावा) शुक्ल धान्य दूर्वा से पूर्ण परिप्लुत है। यह सूत्र-ग्रन्थि से युक्त और नव चन्दन पल्लवों से संयुक्त तथा कदलीस्तम्भों के समूहों से परिवेष्टित है। उत्तम रत्नों के सार के द्वारा निर्मित मण्डपों की संख्या तीन करोड़ है। जलते रत्न दीपकों, पुष्प और धूप, सुगन्ध एवं शृङ्गार के योग्य भोग की वस्तुओं के समुदाय से युक्त और अतीव ललित आकल्प तल्पों (शैयाओं) से वह मंडल सुशोभित है। वहाँ पर उनके साथ जाकर जगतपति ने निवास किया था। हे मुनि श्रेष्ठ वे सब वहाँ रास को देख कर अत्यन्त विस्मित हुए थे।" फिर क्या हुआ—

आविर्वभूव कन्यैका कृष्ण स्यमवाम् पार्श्वतः।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे ॥
रासे संभूय गीलोकं सा दधाव हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥

'उस समय श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व से एक कन्या प्रकट हुई। उसने तुरन्त ही पुष्प लाकर प्रभु के चरणों में अर्घ्य दिया। वह रास में मिल कर प्रभु के सम्मुख स्थित हुई, इससे उसका नाम राधा हुआ।' 'जब राधा प्रधु के निकट रत्न सिंहासन पर बैठ गई तो उसके रोमों से

एक लाख करोड़ गोपियाँ निकल आईं जिनका रूप और वेश बिल्कुल राधा जैसा ही था। इसी भाँति श्रीकृष्णजी के रोम कूपों से तुरन्त ही गोपों का समुदाय आविर्भूत हुआ जिनकी संख्या तीस करोड़ थी और जिनका रूप और वेश श्रीकृष्ण के ही समान था। उसी समय श्रीकृष्ण के रोम कूपों से गौओं का गण भी प्रकट हुआ जिसमें असंख्यों बलीवर्द, सुरभियाँ, वत्स आदि थे, बहुत-सी कामधेनुएँ भी थीं। उनमें एक बलीवर्द करोड़ों सिंहों के समान बलवान था। इसको भगवान ने शिवजी की सवारी के लिए दे दिया। श्रीकृष्ण के चरणों से हंसों की पंक्ति भी प्रकट हुई। उनमें एक राजहंस महान बल और पराक्रम वाला था, उसे ब्रह्माजी को वाहन बनाने के लिए दे दिया गया। इसी प्रकार एक तुरंग धर्म के लिए और एक महान सिंह दुर्गा देवी को दे दिया गया।'

इस प्रकार 'सृष्टि-रचना' का यह वर्णन अपने ढङ्ग का निराला है। अन्य पुराणों के वर्णनों में भी कहीं-कहीं अलङ्कारों, चमत्कारपूर्ण बातों का उपयोग किया गया है, पर वह प्रायः तर्क और विज्ञान के अनुकूल ही है। मालूम होता है कि 'ब्रह्मवैवर्त' के लेखक ने लोगों को सीधा-सादा वर्णन सुनाने के बजाय इसमें चमत्कारी कल्पना का बड़ा पुट देकर उसे अधिक आकर्षक बनाने का यत्न किया है। इसमें तो सन्देह नहीं कि सामान्य जन सदैव रोचक वर्णन को ही अधिक सलग्नता पूर्वक सुनते हैं और उसे याद भी रखते हैं। पर हम इसे एक तरह का 'आख्यान' ही कह सकते हैं। इसमें जो प्रत्येक वस्तु और प्राणियों की संख्या अरबों दी गई है, इससे भी कथा-कहानी का-सा भाव उत्पन्न होता है।

विश्व का स्वरूप—

विश्व-ब्रह्माण्ड के विस्तार के सम्बन्ध में 'ब्रह्मवैवर्त' की मान्यता

अवश्य ही विचारणीय है पञ्च भूतों से निर्मित यह पृथ्वी और इस प्रकार के अन्य पिंडों की तथा उनमें निवास करने वाले मनुष्यों, देव-देवियों तथा अन्य प्राणियों की संख्या अनन्त है, इस तथ्य को उसमें बलपूर्वक प्रतिपादित किया गया है। उसका कथन है—

"विश्व असंख्य हैं और इन असंख्य विश्वों में से प्रत्येक विश्व में इसी प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि होते हैं। पाताल से ब्रह्म-लोक के अन्त तक एक ब्रह्माण्ड बताया गया है। उसके ऊपर वैकुण्ठ-लोक है जो इस ब्रह्माण्ड से बाहर है। उसके भी ऊपर गोलोक है जिसका विस्तार पचास करोड़ योजन का है। यह गोलोक धाम नित्य-सत्य स्वरूप वाला है। जिस प्रकार भगवान कृष्ण का स्वरूप नित्य है वैसा ही उनके गोलोक का होता है। यह पृथ्वी तल का मण्डल सात द्वीपों में सीमित है। इसमें सात महासागर भी हैं जिसमें उनचास उपद्वीप अवस्थित हैं, सहस्रों पर्वत और वन भी हैं। ऊपर के भाग में ब्रह्मलोक से युक्त सात स्वर्लोक होते हैं और नीचे के भाग में पाताल भी सात हैं। इस प्रकार यह पूरा ब्रह्माण्ड है जिसमें ऊपर नीचे चौदह भुवन होते हैं।"

"ये समस्त लोक कृत्रिम हैं और धरा के अन्तर्गत ही हैं। इस धरा के नाश होने पर वे सब भी नष्ट हो जाते हैं। जल के बुदबुदों के समान ही समस्त विश्वों के समुदाय अनित्य हैं। केवल 'गोलोक' और 'बैकुण्ठ' नित्य हैं— सत्य हैं और निरन्तर अकृतिम हैं। इनके लोमकूपों में से प्रत्येक में एक ब्रह्माण्ड स्थित है। ऐसे ये कितने ब्रह्माण्ड हैं इनकी गिनती स्वयं भगवान भी नहीं कर सकते, अन्य कोई तो इसे जान ही क्या सकता है? प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव पृथक्-पृथक् हुआ करते हैं। देव गण की संख्या तीन करोड़ है और प्रत्येक

ब्रह्माण्ड में इतने ही देव रहते हैं। दिशाओं के स्वामी, दिक्पाल, नक्षत्र और ग्रह आदि भी प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रहते हैं।"

यद्यपि 'ब्रह्मवैवर्त' का यह वर्णन पौराणिक भाषा में है, पर लोकों और ब्रह्माण्डों के अनन्त होने के सम्बन्ध में उसने जो कुछ विचार प्रकट किया है वही आज का विज्ञान कह रहा है। वर्तमान समय में जो करोड़ों रुपया लगाकर महा विशाल दूरबीनें बनाई गई हैं उनके द्वारा अवलोकन करने से विदित होता है कि आकाश में विश्व-ब्रह्माण्डों की कोई संख्या ही नहीं है। पचास वर्ष पहले बनी दूरबीनों द्वारा ही जितने तारागण (सूर्य) आकाश में दिखाई पड़ते थे उनकी संख्या अरबों मानी गई थी। और अब जितनी अधिक शक्तिशाली दूरबीन बनती हैं उनसे और भी नये ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ते जाते हैं। ये कितने बड़े क्षेत्र में फैले हैं इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। बिजली और प्रकाश की गति एक सैकिण्ड में पौने दो लाख मील मानी गई है। अगर कोई यन्त्र इसी गति से चलता जाय तो करोड़ वर्ष में वह, जितने विश्व (सौर लोक) दिखाई पड़ रहे हैं उनके सौ वें भाग तक भी नहीं पहुँच सकता। इस दृष्टि से पुराणकार का कथन सत्य है कि समस्त लोकों और ब्रह्माण्डों की गणना कोई नहीं कर सकता, यथार्थ ही है। एक ऐसे युग में जब कि जन साधारण चन्द्रमा को, जो केवल दो लाख मील की दूरी पर है, सूर्य से ऊपर मानते थे, विश्व ब्रह्माण्ड के विस्तार का इतना अनुमान कर लेना भी कम महत्वपूर्ण नहीं था।

राधा रहस्य–

यद्यपि अन्य पुराणों में तथा प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में राधा के सम्बन्ध में किसी प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता, पर 'ब्रह्मवैवर्त' में वही सर्वत्र व्याप्त हैं और उनका महत्व समस्त देव-देवियों से अधिक माना

गया है, यद्यपि इसमें उनके साकार रूप का वर्णन किया है और उनके रास-विलास में श्रृङ्गार-रस की पराकाष्ठा कर दी है। फिर भी जब हम राधा चरित्र का विवेचन करते हैं, तो वह परमात्मा की निराकार शक्ति ही प्रतीत होती हैं। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'राधिकोपाख्यान' में कहा गया है—

पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रास मण्डले।
शतश्रृं गैकदेशे च मालतीमल्लिकावने ॥

रत्नसिंहासनै रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पति :
स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूव रमणोत्सुकः ॥

रमणकत्तु मिच्छा च तद्बभूव सुरेश्वरी।
इच्छाया च भवेत् सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च।

एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः।
दक्षिणांगश्च श्रीकृष्णौवामार्द्धांगश्च राधिका ॥

अर्थात् 'प्राचीन समय में उस वृन्दावन में जो गोलोक के रास मण्डल में स्थित हैं, शतश्रृङ्ग, स्थल पर, जहाँ मालती और मल्लिका की लताओं का वन है एक रत्न सिंहासन पर जगत स्वामी श्रीकृष्णजी विराजमान थे। उस अवसर पर उनको रमण की भावना उत्पन्न हुई। भगवान अपनी इच्छा के परिपूर्ण हैं, इसलिए जैसे ही इच्छा हुई वैसे ही सुरेश्वरी उपस्थित हो गई। उस स्वेच्छामय भगवान की इच्छा मात्र से सब कुछ हो जाता है, उसमें किंचित भी विलम्ब नहीं हुआ करता। इसलिए रमण-इच्छा होते ही वे दो रूपों में बँट गये। दाहिना भाग श्री कृष्ण रूप हो गया और बाँया भाग राधिका के रूप में हो गया।'

यह वर्णन आलङ्कारिक रूप से 'अर्धनारीश्वर सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। जैसा हम अन्य पुराणों में लिख चुके हैं, भू-

मण्डल पर एक युग ऐसा भी था जब इस पर निवास करने वाले प्राणियों में नर मादा का भेद न था। उसके कारण जीव जगत की प्रगति रुकी थी। तब उनमें क्रमशः परिवर्तन होने लगा और ब्रह्मा जी की 'मैथुनी सृष्टि' प्रकट हो गई। यह सिद्धान्त इतना स्वाभाविक है कि केवल हमारे पुराणों में इसका उल्लेख नहीं किया गया है, वरन् अन्य धर्मों के ग्रन्थों में भी पाया जाता है। ईसाइयों की 'बाइबिल' में कहा गया है कि जब भगवान ने संसार में 'आदम' (आदि मानव) को अकेला देखा तो उसकी बाँयी पसली निकाल कर उसे एक स्त्री के रूप में निर्मित कर दिया। वही 'आदम' की पत्नी 'हव्वा' हुई। वर्तमान समय में विकास विज्ञान का अनुशीलन करने वाले वैज्ञानिक भी यही मानते हैं कि नर-मादा की रचना सृष्टि के आदिकाल की नहीं है वरन् बीच के किसी युग में यह विभाजन क्रमशः हुआ है। एक अन्य सम्प्रदाय के 'पुराण' में भी कहा गया है कि 'मैथुनी सृष्टि' से पूर्व संसार में जो प्राणी थे वे 'जुगलिया' थे, अर्थात् नर-मादा एक साथ पैदा होते थे।

इस प्रकार राधा-कृष्ण ही विश्व सञ्चालक सत्ता के दो रूप हैं। वर्तमान जगत् में भी हम देखते हैं कि नर और मादा का संयोग हुए बिना सृष्टि-क्रम आगे नहीं बढ़ता, उसी के आधार पर मानव के मन से विश्व नियन्ता शक्ति को भी उसी प्रकार के दो बिभागों में विभाजित कर दिया है। इसके पश्चात् भक्तिमार्गीय विद्वानों ने अनेक प्रकार से उसकी व्याख्या करके उसे दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप दे दिया। इसी अध्याय में राधा की व्याख्या करते हुए कहा गया है—

रा शब्दोच्चारणाद्भक्तो याति मुक्ति सुदुर्लभाम्।
धा शब्दोच्चारणात् दुर्गे धावत्येव हरेः पदम्॥
रा इत्यादानवचनो धाच निर्वाण-वाचकः।
ततोऽवाप्नोति मुक्तिञ्च सा राधा प्रकीर्तिता॥

अर्थात् 'राधा' शब्द में 'रा' का उच्चारण करने से भक्त दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है और 'धा' के उच्चारण से भगवत् पद की तरफ दौड़ कर जाता है। 'रा' का अक्षर आदान वाचक है और 'धा' निर्वाण वाचक कहा गया हैं। इसलिए जिससे मनुष्य मुक्ति-पद को प्राप्त होता है उसी को 'राधा' कहा गया है।"

राधा की 'अर्ध नारीश्वर' वाली उत्पत्ति को जान कर और उसके नाम के दोनों अक्षरों के आशय को समझ कर उसमें दोष या दुर्भावना का कोई कारण नहीं कहा जा सकता। चाहे दार्शनिक और योग मार्ग के अनुयायी इन बातों को महत्व देने को प्रस्तुत न हों, पर भक्ति-मार्ग वालों में इस प्रकार का भाव बहुत अधिक कल्याणकारी माना गया हैं। वर्तमान समय में जिस प्रकार सामान्य जनता राधा-कृष्ण की रास-लीलाओं को देखकर उनको केवल मुरली बजाने और नाचने वाला समझ बैठी है, वह बात उपरोक्त विवेचन में कहीं दिखाई नहीं पड़ती। इस रूप में 'राधा' की साधना एक उच्च आध्यात्मिक मार्ग सिद्ध हो सकती है और हमारे देश में एकाध सम्प्रदाय इसी भाव से उपासना करके अध्यात्म-क्षेत्र में प्रगति कर भी चुका है।

गणेश-जन्म का अद्भुत वृतान्त-

यद्यपि शिवजी को पुराणों में महान जितेन्द्रिय बतलाया गया है, जिन्होंने कामदेव को जला कर भस्म कर दिया, अर्थात् उस पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली, फिर भी सब देवताओं ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए हर तरह से जोर लगा कर उनका विवाह करा ही दिया। इससे उनके दो पुत्र भी हुए पर उन दोनों के ही जन्म में बड़े विघ्न आये। प्रथम पुत्र स्कन्द कुमार तो जन्मते ही माँ-बाप से अलग हो गये और उनका पालन-पोषण अज्ञात रूप से हुआ। दूसरे गणेशजी का भी जन्म

लेने के कुछ देर ही पश्चात् मस्तक कट गया और उसको हाथी का मस्तक जोड़ा गया, जिससे वे गज वदन और लम्बोदर बन गये। ये कथाएँ तो थोड़े-बहुत परिवर्तित रूप में सभी पुराणों में पाई जाती है, पर 'ब्रह्मवैवर्त' के रचयिता ने इन अप्रिय घटनाओं के कारणों पर जो प्रकाश डाला है उससे उसकी अपूर्व सूझ-बूझ का पता लगता है। यद्यपि शास्त्रों में यह भी कह दिया गया है कि देवता अनादि हैं, तो भी गणेशजी की उत्पत्ति और जीवनी एक विशेष विचित्रता अवश्य रखती है और उसका रहस्य 'ब्रह्मवैवर्त' के सिवाय अन्यत्र कदाचित् ही मिल सके।

गणेश-जन्म की कथा के सम्बन्ध में आमतौर पर यह शङ्का की जाती है कि भगवान ने हाथी का ही मस्तक काटकर क्यों लगाया ? क्या वे किसी मनुष्य का ही मस्तक नहीं लगा सकते थे ? इसका समाधान करते हुए 'ब्रह्मवैवर्त' में कहा गया है कि जिस हाथी का मस्तक लगाया गया था, उसके मस्तक पर कुछ समय पूर्व इन्द्र और रम्भा ने वह फूल रख दिया था, जिसको दुर्वासा ऋषि विशेष रूप से विष्णु भगवान के यहाँ से लाये थे। उसी पुण्य के फल से हाथी ने यह सम्मान प्राप्त किया।

दूसरी कथा गणेशजी के एक दन्त होने की है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि जब परशुराम जी बड़े-बड़े राजाओं पर विजय प्राप्त करके शिवजी और पार्वती के दर्शनार्थ पहुँचे तो गणेशजी ने उनको भीतर जाने से रोका, क्योंकि भीतर शिव-पार्वती एकान्त में विराजमान थे। परशुरामजी बार-बार आग्रह करते रहे और जब गणेश ने उनको मार्ग नहीं दिया तो उन्होंने उन पर परशु से आक्रमण किया जिससे गणेशजी का एक दांत टूट गया।

ऐसी कथाएँ प्रायः मनोरंजन का साधन ही होती है, फिर भी

पाठक उनसे सत्कर्मों के करने और पारस्परिक कलह से बचने की शिक्षा ले सकते हैं। गणेशजी की कथा जगह-जगह भिन्न प्रकार से कही गई है पर 'ब्रह्मवैवर्त' की कथा सबसे अधिक पृथक है यह कहना ही पड़ेगा।

शृङ्गार-रस की अत्यधिकता–

पर एक निरपेक्ष पाठक को 'ब्रह्मवैवर्त' को पढ़ते समय जो बात सबसे अधिक खटकती है, वह यही है कि लेखक ने अधिकांश कथाओं में और खास कर 'राधा-कृष्ण' के वर्णन में शृङ्गार-रस के वर्णन को इतना अधिक बढ़ा दिया है कि उसे औचित्य की सीमा से बाहर कहा जा सकता है। इन वर्णनों से यह प्रतीत होता है कि इस पुराण को चाहे जिसने लिखा हो, कवि की दृष्टि से वह अवश्य ही शृङ्गार-रस का बहुत बड़ा प्रेमी था। इस प्रकार का वर्णन अन्यत्र भी किया गया है पर 'ब्रह्मवैवर्त' में यह वर्णन जैसे खुले शब्दों में किया गया है, उसका समर्थन नहीं किया जा सकता। हमने ऐसे अनेक अंशों को पहले ही निकाल दिया है. फिर भी जो कुछ बचा है उसी से पाठकों को हमारे कथन की सचाई विदित हो जायगी। पुराणकार ने शरद् पूर्णिमा को गोपियों के रास का वर्णन आरम्भ करते हुए राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन इन शब्दों में किया है—

कटाक्षकामवाणैश्च विद्धः क्रीडारसोन्मुखः।
मूर्च्छां प्राप्य न पपात तस्थौ स्थाणुसमो हरिः॥
पपात मुरली तस्य क्रीडाकमलमुज्ज्वलम्।
द्वितीयं पीतवस्त्रञ्च शिखिपिच्छं शरीरतः।
क्षणेन चेतनां प्राप्य ययौ राधान्तिकं मुदा।
कृत्वा वक्षसि तां प्रीत्या समालिष्य चुचुम्ब सः॥

श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण संप्राप्य चेतनां सती ।
प्राणाधिकं प्राणनाथं समालिष्य चुचुम्बह ॥
मनो जहार राधायाः कृष्णस्तस्थौ च सा मुने ।
जगाम राधया सार्धं रसिको रतिमन्दिरम् ॥
रत्नप्रदीपसंयुक्तं रत्नदर्पण संयुतम् ।
चारुचम्पकशय्याभिश्चन्दनाक्ताभी राजितम् ॥
कर्पूरान्विततताम्बूलैर्भोगद्रव्यैः समन्वितम् ।
उवास राधया सार्धं कृष्णस्तत्र मुदान्वितः ॥

अर्थात् 'राधा के सुन्दर स्वरूप को देख कर और उसके कटाक्ष रूपी कामदेव के वाणों से विद्ध होकर श्रीकृष्ण क्रीड़ा के रस के उन्मुख होते हुए एक क्षण के लिये बेसुध हो गये । पर वे भूतल पर गिरे नहीं, एक जड़ वस्तु के समान जहाँ के तहाँ अचल हो गये । उस अवसर पर उनकी मुरली और हाथ का कमल अवश्य हाथ से छूट कर भूमि पर गिर गया, ऊपर ओढ़ा हुआ पीताम्बर तथा मोर-मुकुट भी खिसक कर गिर पड़े । पर दूसरे ही क्षण उनकी चेतना लौट आई और उन्होंने राधिका के पास जाकर उसे हृदय से लिपटा लिया और बड़े प्रेम से चुम्बन किया । श्रीकृष्ण का स्पर्श पाते ही राधा भी चैतन्य हो गई और उसने भी प्राणों से प्यारे कृष्ण को गाढ़ आलिङ्गन करके चुम्बन किया । उस समय कृष्ण ने राधा के और राधा ने कृष्ण के मन को हरण कर लिया था । रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण फिर राधा के साथ रति मन्दिर में चले गये । वह रति मन्दिर रत्नों के दीपकों से शोभित था और उसमें रत्नों के ही दर्पण लगे थे । वहाँ चम्पा के सुन्दर पुष्पों की शय्या लगी थी जो चन्दन से चर्चित थी । वह मन्दिर कर्पूर युक्त ताम्बूल (पान के बीड़ों) आदि अनेक भोग द्रव्यों से समन्वित था । वहाँ श्रीकृष्ण राधा के साथ अत्यन्त हर्ष युक्त हो विराजमान हुए ।

श्रीकृष्ण और गोपियों के रास का वर्णन 'विष्णु-पुराण 'भागवत' तथा अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता है। भागवत की 'रास पंचाध्यायी तो एक बहुत प्रसिद्ध साहित्यिक रचना मानी गई है। पर इन सब में रास का वर्णन करते हुए और उस अवसर पर शृंगार रस की आवश्यकता को अनुभव करते हुए भी शालीनता की पूरी तरह रक्षा की गई है। 'विष्णु पुराण' में रास आरम्भ होने का वर्णन करते हुए लिखा है—

'तब श्रीकृष्ण ने किसी से प्रिय आलाप, किसी पर भ्रूभङ्गी से दृष्टि और किसी के कर ग्रहण पूर्वक उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न किया इसके पश्चात् उस उदारचेता ने उस प्रसन्न चित्त वाली गोपियों के साथ रास-विहार किया। उस समय कोई भी गोपी कृष्ण के स्पर्श से पृथक नहीं होना चाहती थी, इसलिए एक ही स्थान पर उनके स्थिर रहने से रास-मण्डल नहीं बन पाया। तब भगवान श्रीहरि ने एक-एक गोपी का हाथ अपने हाथ में लेकर रास-मण्डल बनाया। उस समय श्रीकृष्ण ने चन्द्रमा, कौमुदी और कुमुदबन विषयक गीत गाये और गोपियाँ केवल श्रीकृष्ण के नाम का गान करने लगीं। फिर—

परिवृत्ति श्रमेणैका चलद्वलयलापिनीम्।
ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी मधुनिघातिनः॥
काचित्प्रविलसद्बाहुः परिरभ्य चुचुम्बतम्।
गोपी गीतस्तुतिव्याजन्निपुणा मधुसूदनम्॥

'तभी एक गोपी नाचते नाचते थक गई तो उसने कंकड़ की झनकार करते हुए अपनी बाहुलता श्रीकृष्ण के कण्ठ में डाल दी। एक अन्य चतुर गोपी गीत की प्रशंसा करने के मिस से अपनी बाहु फैला कर श्रीकृष्ण से लिपट गई और चुम्बन करने लगी।'

ता वार्यमाणा पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा।
कृष्ण गोपांगना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः॥

"वे रतिप्रिया गोपियाँ पति, पिता भ्राता आदि के रोकने पर भी चली आई थीं और रात्रि में श्रीकृष्ण के साथ रास-विहार करती थी।"

'विष्णु पुराण' में इससे अधिक चर्चा रासलीला की नहीं की गई है। जब इतनी अधिक गोपियाँ एक साथ रात्रिकालीन रास-नृत्य में भाग लेने आती थीं तो सम्भोग जैसी बात की चर्चा व्यर्थ ही होती है और पाठक का ध्यान-प्रेम-प्रदर्शन तक ही जाता है।

'भागवत' के वर्णन में स्पष्ट कह दिया है कि "वे गोपियाँ श्रीकृष्ण के पास 'जार बुद्धि' से आई थी, तो भी उन्होंने आलिंगन तो परमात्मा —भगवान का ही किया था। उस समय उन्होंने अपनी मानसिक वासना द्वारा दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया था।" आरम्भ में भगवान् ने उनकी परीक्षा लेने के लिए समझाया भी कि वे इस समय अपने पतियोंके घरों को छोड़कर यहाँ कैसे चली आईं ? यह तो लोक-प्रथा के विरुद्ध कार्य है। इसलिए उनको तुरन्त वापस चले जाना चाहिए। पर जब इन बातों को सुन कर गोपियाँ व्याकुल हो गई और रोने-कलपने लगी तो भगवान ने उन्हें प्रसन्न करने के निमित्त रास नृत्य प्रारम्भ किया—

"गोपियों का जीवन भगवान का प्रेम ही है। वे श्रीकृष्ण से सटकर नाचते-नाचते ऊँचे स्वर से मधुर गान कर रही थी। भगवान का स्पर्श पाकर और भी आनन्दमग्न हो रही थी। उसके राग-रागनियों के पूर्ण गान से यह जगत अब भी गूँज रहा है। एक गोपी नृत्य करते-करते थक गई तो उसने बगल में ही खड़े श्याम सुन्दर के कन्धे को अपने हाथ से कस कर पकड़ लिया। भगवान ने दूसरा हाथ अन्य गोपी के कन्धे पर रखा हुआ था। एक गोपी नृत्य कर रहीं थी। नाचने के कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे, उनकी छटासे उसके कपोल और भी चमक रहे थे। उसने कपोलों को भगवान के गालों से सटा दिया। श्रीकृष्ण ने अपने मुखका चबाया पान उसके मुख में दे दिया।

कोई गोपी नूपूर और करधनी के घुँघरूओं को झनकारती हुई नाच और गा रही थी। जब वह बहुत थक गई तो उसने बगल ही में खड़े मोहन प्यारे के शीतल हाथ अपने दोनों स्तनों पर रख लिए।''

'भागवत' के रास-वर्णन का यही नमूना है। इसमें सन्देह नहीं कि यह पूर्ण शृंगार-रसयुक्त है, तो भी इसको यथा सम्भव अश्लीलता से दूर रखा गया है और कोई अनुचित शब्द प्रयोग में नहीं लाया गया। इस बात पर विवाद करना कि ऐसा कार्य उचित था या अनुचित बिल्कुल व्यर्थ है। ऐसे काव्य-ग्रन्थों के वर्णन सदैव कवि की कल्पना, प्रतिभा, और रुचि के अनुसार लिखे जाते हैं, और उनके आधार पर कभी ऐसा निश्चय नहीं किया जा सकता कि ऐसा ही हुआ होगा। हद तो यहाँ केवल विभिन्न ग्रन्थों की वर्णन शैली की आलोचना कर रहे हैं, और यह वतलाना चाहते है कि ऐसे शृङ्गारमय वर्णनों में प्रेम युक्त हाव-भाव और ब्यवहार का चित्रण करते हुए मर्यादा का अति-क्रमण नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से विद्वान उसे आपत्तिजनक वतलाते है और सर्व साधारण के पठन-पाठन के अयोग्य मानते हैं। इसीलिए भागवतकार इस वर्णन को करते हुए बीच-बीच में यह संकेत भी करते जातेहैं कि ''यह भगवान की लीला है,इसमें दूषित भावनाओं का संशय रखना अनुचितहै।' इसकोस्पष्ट करनेके लिए अन्तमें श्रीशुक-देवजी से कहलाया गया है—

एवं शशांकांशुविराजिता निशा। स सत्यकामोऽनुरताबलागणः।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाता शरत्काव्य-कथा-रसाश्रयः।
विक्रीडितं ब्रजवधूभिरिदं च विष्णोः,
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथयर्गवेद यः।
भक्ति परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगभाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः।

''निस्सन्देह शरद पूर्णिमा की उस अत्यन्त सुन्दर रात्रि में, जिसमें काव्यों में वर्णित सभी रस सामग्रियाँ उपस्थित थी, भगवान ने अपनी

प्रेमी गोपियोंके साथ यमुना पुलिन पर विहार किया । पर यह स्मरण रखना चाहिए कि भगवान सत्य-संकल्प हैं । यह सब उनके चिन्मय संकल्प की चिन्मयी लीला है । और इस लीला में उन्होंने काम भावको सर्वथा अपने आधीन—अपने आप में कैद करके रखा ।"

"जो धीर पुरुष ब्रज-युवतियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण के चिन्मय रास-विलास का श्रद्धा के साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान के चरणों में परा भक्ति की प्राप्ति होती है और बहुत ही शीघ्र अपने हृदय रोग—काम विकार से छुटकारा पा जाताहै । उसका काम-भाव सदा के लिए नष्ट हो जाता है ।"

भागवतकार ने श्रीकृष्ण की रास-लीला के मूल स्वरूप और उसके प्रभाव के विषय में जो कहा है वह एक विशेष श्रेणी के साधकों के लिए सत्य हो सकता है । जो सच्चे हृदयसे भक्ति मार्गके पथिक वन चुके हैं और आरम्भसे ही संयम-नियमका पालन करनेसे जिनके अन्तर में सच्ची सात्विकता का उदय हो चुका हैं, वे अपने इष्टदेव का आश्रय लेकर ऐसी स्थिति में भी मन को पवित्र और संयत रख सकते हैं, पर यह मार्ग अल्प-संख्यक लोगों के लिए ही सम्भव है । बहुसंख्यक लोगों के लिए जो सांसारिक जीवन व्यतीत क ते हैं, यह उत्थान के वजाय पतन का माध्यम ही वन सकता है । इस मार्ग को ऐसाही माना जा सकता है जैसे किसी व्यक्ति की परीक्षा के लिए उसके सम्मुख धन और रूप का बहुत बड़ा प्रलोभन रखना । यद्यपि संसार में ऐसे भी व्यक्ति पाये जाते हैं जो लाखों रुपये और अनुपम सौन्दर्यके प्रलोभन को ठुकरा कर सत्य मार्ग पर दृढ़ रहतेहैं पर उनकी अपेक्षा दूसरी प्रकारके व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है, जो इसमे कहीं छोटे प्रलोभन पर भी नित्य फिसलते रहते है । चरित्र और नीति की उच्चता को जानते हुए भी अनीति और चरित्र-हीनताके मार्ग पर चलने लग जाते हैं । इसलिए धार्मिक कथाओं और धर्म ग्रन्थों के वर्णन में संयम, नियम सच्चरित्रता श्रेष्ठ नीति का ही वर्णन कल्याणकारी है ।

उदाहरण के लिए हम गोस्वामी तुलसीदास की रामायण को ले सकते है। भक्ति की दृष्टि से वह इस युग की महान रचना है और साहित्य की दृष्टिसे भीं एक स्थायी निधि है। सब रसोंका वर्णन उसमें पाया जाता है। जैसे धर्म की दृष्टि से, वैसे ही कवित्व की दृष्टिसे वह जगत प्रसिद्ध है, पर उसमें एक भी घर्णन ऐसा नहीं जो पाठक पर विपरीत प्रभाव डाल सके। इस दृष्टि से 'ब्रह्मवैवर्त' में रास क्रीड़ा के शृङ्गार विषतक वर्णन को जिस सीमा तक बढ़ा दिया गया है, उसे यदि न भी किया जाता तो ग्रन्थ की कोई हानि नहीं थी। यद्यपि इन सब लेखकों ने बीच-वीच में भगवान के आत्मस्वरूप होने और सर्वदा अनासक्त रहनेकी चर्चा करदी है,पर फिरभी सामान्य पाठकों पर ऐसी रचनाओं का प्रभाव अवांछनीय होने की ही आशंका रहती है। इस तथ्य को ध्यान में रख कर हमने इस प्रकार के वर्णनों को पृथक कर दिया है, फिर भी कथा के बीचमें कहीं ऐसीं दो चार बातें दिखाई पड़े तो पाठकों को 'भागवतकार' के विचचेन को ध्यान में रख कर उससे भगवत्-भक्ति की प्रेरणा ही ग्रहण करनी चाहिए।

ब्रह्म निरूपरण—

यद्यपि 'ब्रह्मवैवर्त' के रचयिता ने राधा-कृष्ण और उनके निवास स्थान—गोलोक की महत्ता बढ़ाने में अतिशयोक्ति और अलङ्कारों से बहुत अधिक काम लिया है और उन्हीं को विश्व-ब्रह्माण्ड की सर्वोपरि आदिशक्ति बतलाया है, पर जहाँ 'ब्रह्म-निरूपण' के दार्शनिक विवेचन की अवश्यकता पड़ी है,वहाँ वेदान्त सिद्धान्तको ही स्वीकार करना पड़ा है। जब नारद ने प्रश्न किया कि 'क्या ब्रह्म आकार वाला है अथवा निराकर है ? उस ब्रह्म का विशेषण क्या है अथवा उसकी अविशेषता क्या है ?" तो उत्तर में यही कहा गया है—'परमात्मा की स्वरूप सनातन परमब्रह्म है, जो कि सबके देहों में स्थित रहता है और कर्मो का साक्षी रूप है। पाँच प्राण स्वयं विष्णु है, मन प्रजापति है, समस्त ज्ञान मैं (ब्रह्मा) हूँ और शक्ति 'मूल प्रकृति' हैं। हम सब उसी परमात्मा

के अधीन रहते है । उसके स्थित होने पर ही हम सब संस्थित होते हैं । उसके 'परम' में चले जाने पर हम सब भी समाप्त हो जाया करते हैं, जैसे किसी राजा के साथ उसके अनुगामी भी चले जाया करते हैं । यह जीवात्मा उस परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब होता है और कर्मो के भोगने वाला हुआ करता है । वह ब्रह्म एक ही है । जब विश्व का क्षय हो जाता है तो हम सब उसीमें प्रलीन (समाविष्ट) हो जातेहैं और यह चराचर जगत भी उसमें प्रलीनहो जाताहै । वह ब्रह्म केवल ज्योति स्वरूप है ।"

जैसा हम कह चुके है राधा और कृष्ण के तत्व और लीलाओं को विस्तारपूर्वक बतलाने वाला प्रमुख पुराण यही है । यह काफी बड़ा है इसलिए अन्य पुराणों की तरह हमने इसमें पुनरावृत्तियों और अधिक अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों को छोड़ दिया है । अब इसमें पाठकों को अधिकतर ऐसी कथाएँ ही मिलेंगी जिनमें कुछ नवीनता है अथवा जो ईश्वर-भक्ति की शिक्षा देती हैं । पर अलङ्कारयुक्त शृङ्गाररस की रचना करना इसके लेखक की बिशेषता है । इसलिये रसिक प्रकृति के पाठकों और काव्य प्रेमियों को यह अधिक रुचिकर प्रतीत होगा । वैसे सभी पाठकों को इसमें अनेक नवीन बातें मिलेंगी और वे इसके द्वारा पौराणिक कथाओं की विशेष जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

——